अथर्ववेद में है सर्व रोग नाशक मंत्र

डॉ सरोज शुक्ला
लखनऊ (उ.प्र.)

पश्चिमी वैज्ञानिक नवीन खोज की पृष्ठभूमि में अगर हम मूलभूत गत्यात्मक तथ्यों को देखें तथा भारतीय वेदों का अध्ययन करें तब हमें यह आश्चर्य होगा कि 'आधुनिक खोजों' का वर्णन हमारे वेदों में है। पश्चिमी सभ्यता एवं विज्ञान की नवीनतम देन है मनेचिकित्सा अर्थात् मानसिक बीमारियों को समझने एवं उपचार करने की पद्धतियाँ। मनोचिकित्सा मानव जाति के लिए, विशेष रूप से आधुनिक रूप में एक मूल्यवान विज्ञान है, इसका उल्लेख व विस्तृत विवरण हमारे प्राचीन ग्रन्थ 'अथर्व वेद' में मिलता है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में इस दिशा में भविष्य के लिए काफी सुझाव व संभावनाएँ उपलब्ध हैं। विन्सटन चर्चिल (1944) ने ठीक ही कहा है– भारतीय मनश्चिकित्सा पद्धति काफी उपयोगी व वैज्ञानिक है। हैन्स जेकोब्स ने भारतीय मनश्चिकित्सा पद्धति के उपयोग का सुझाव देते हुए कहा है कि हिन्दू धर्म एक गहरे समुद्र के समान है। इसमें जितना अधिक अन्दर जायेंगे उतना ही अधिक सामग्री आप प्राप्त करेंगे। मानसिक रोगियों की चिकित्सा कार्य का प्रारम्भ भारत में ईसा से 3 शताब्दी पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था परन्तु प्रथम शताब्दी तक इसका भविष्य अन्धकारमय रहा। इसके उपरान्त इस दिशा में आशातीत सफलता प्राप्त हुई। विभिन्न मनोचिकित्सा पद्धतियों को बताने से पूर्व यहाँ यह जानना आवश्यक प्रतीत होता है कि भारतीय ग्रन्थों के अनुसार सामान्य व असामान्य में अंतर है।

भारतीय प्राचीन ग्रन्थ अथर्ववेद में असामान्यता से सम्बन्धित तथा मनश्चिकित्सा पद्धतियों के सम्बन्ध में प्रचुर मात्रा में सामग्री उपलब्ध है। अथर्ववेद का उद्देश्य है कि मानव 100 वर्ष तक जीवित रहे तथा उसे ब्रह्म की प्राप्ति हो। अथर्ववेद का वर्ण्य विषय व मूल भावना तीनों वेदों से भिन्न थी क्योंकि इसका यज्ञादि से संबंध नहीं था। परंतु आचार्य कपिल देव द्विवेदी ने इसका खण्डन किया है कि अथर्ववेद को पहले वेद संज्ञा प्राप्त नहीं थी और बाद में यज्ञीय मंत्रों का संकलन होने पर ही इसे वेद की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया गया। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने निम्नलिखित तर्क दिये हैं। पूर्व मीमांसा में सिद्ध किया गया है कि त्रयी नाम ग्रंथों पर निर्भर न रहकर विषय पर निर्भर है। पद्य बंध को ऋक् कहते हैं, गीति को साम और गद्य को यजुः। अथर्ववेद में तीनों का समावेश होने के कारण पृथक उल्लेख नहीं किया गया। अथर्ववेद में कई बार अथर्वा का उल्लेख आया है। इसे अग्नि का आविष्कारक और यज्ञ विधान प्रवर्तक कहा गया है। वेद के चार पुरोहितों में ब्रह्मा जो अथर्ववेद का ऋत्विक है, उसे ब्रह्म विद्या के उपदेशार्थ प्रतिष्ठित किया गया है। ब्रह्मा को अथर्ववेदवित् होना अनिवार्य है। ऋक, साम, यजुः ये तीनों वेद यज्ञ में प्रयुक्त होते हैं। परंतु वर्तमान जीवन को सुखमय बनाने के लिए जिन–जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उन सभी की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों का विधान अथर्ववेद में है। अतरू वैदिक समाज का सर्वांगीण चित्र प्राप्त करने के लिए अथर्ववेद भी वेद की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया गया। अथर्ववेद में जीवन के दैहिक, दैविक एवं आध्यात्मिक बीमारियों को ठीक करने की छोटी से छोटी तकनीक की पूरी जानकारी है। आध्यात्मिक चिकित्सा से असंभव एवं असाध्य रोगों की न केवल पहचान की जाती है, बल्कि उनके सही उपचार के लिए जरूरी चिकित्सा विधि अपनाई जाती है। अथर्ववेद में चार प्रकार की चिकित्सा विधियों का वर्णन है–अथर्वणी, अंगिरसी, दैवीय और मनुष्यज। आथर्वणिक मानस चिकित्सा विधि पांच खंड है। मंत्रविद्या, उतर्ण, आश्वासन और उपचार, दैवीय हवन और प्रायश्चित। मंत्र विद्या का संबंध पांच प्रकार के उपचारों से जोड़कर देखा जाता है–संकल्प, सादेश, संवशीकरण, उपचार एवं ब्रह्मकवच। संकल्प के माध्यम से व्यक्ति स्वयं ही अपने को ठीक करने का प्रयत्न करता है। यह स्वसंकेत के समान है। इससे भय, भ्रांति एवं अपराधबोध का सहज ही उपचार हो जाता है। सादेश में चिकित्सक रोगी को सुझाव देता है। इस पद्धति से भय, क्रोध, ईर्ष्या अपस्मार, मोह एवं व्यक्तित्व संबंधी विकृतियों को खत्म किया जाता है। अत्यधिक प्रभावी रूप से

सुझाव देना संवशीकरण है। हिस्टीरिया में इसका प्रयोग किया जाता है। आत्मबल एवं साहस में वृद्धि हेतु भी इसका प्रयोग होता है। आध्यात्मिक उपचार एक विशिष्ट उपचार पद्धति है, जिनमें पापभावना एवं मानसिक समस्याओं का निदान किया जाता है। ब्रह्मकवच एक रक्षात्मक तकनीक है, इसका प्रयोग किसी भी खतरे का सामना करने में किया जाता है। यह व्यक्तित्व के विकास की विशिष्ट तकनीक भी है।

अथर्वणी चिकित्सा को मानस चिकित्सा भी कहते हैं। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि अथर्ववेद एक किताब नहीं बल्कि मानस चिकित्सा यानी साइकोथेरेपी का सबसे पहला ग्रंथ है। अंगिरसी चिकित्सा में अंतःस्रावी ग्रंथियों के बारे में लिखा गया है। इसमें इससे संबंधित जटिलता एवं उसकी चिकित्सा विधि का उल्लेख भी मिलता है। दैवीय चिकित्सा का संबंध प्राकृतिक चिकित्सा से है। आमतौर पर मनुष्य की बनाई दवाओं को बताने वाली विधि को मनुष्यज चिकित्सा कहते हैं, उधर वेगल तंत्र के अनुसार यह भेद दो प्रकार का होता है– आथर्वणिक मानस चिकित्सा एवं कौशिकी भौतिक चिकित्सा। कौशिकी के अंतर्गत अंगिरसी, दैवीय एवं मनुष्यज चिकित्सा क्रम आते हैं। अथर्ववेद संहिता को वेद के नाम से पुकारने के दो कारण और भी हैं। इसकी रचना ब्रह्मा नामक पुरोहित के लिए की गई थी। ब्रह्मा का कार्य है यज्ञ का भली भांति निरीक्षण करना। ऋग्वेद में होता की भांति इसे मंत्रों का, सामवेद के उद्गाता के समान मंत्रों के उच्चारण प्रकार का तथा यजुर्वेद के अध्वर्यु के समान उन यज्ञों को करने की विधि का पूर्ण ज्ञान होता था। इस प्रकार जिस तरह ऋग्वेद में विशुद्ध मंत्र हैं उसी प्रकार अथर्ववेद भी शुद्ध किए हुए मंत्रों का संकलन है। इन्हीं कारणों से अथर्ववेद को चौथा वेद मान लिया गया। अथर्व वेद के अनुसार शारीरिक रूप से मानव मस्तिष्क तीन तत्त्वों से मिलकर बना है। वात, पित्त, श्लेष्मा या कफ ये तीनों गुण जन्म से ही मानव शरीर में विद्यमान रहते हैं, जिनमें मात्रा का अन्तर होता है। परन्तु ये गुण शरीर को सन्तुलित करते हैं। जब तक इन तीन गुणों में समानता होती है, तब तक शरीर सामान्य रहता है तथा कोई बीमारी उत्पन्न नहीं होती। लेकिन जब इन गुणों में अधिकता या न्यूनता आती है तो विभिन्न प्रकार की बीमारियों का उद्भव होता है। अथर्ववेद के अनुसार मानसिक व्यक्तित्त्व का निर्माण भी तीन गुणों, वृत्तियों या विशेषताओं से होता है, सत्व, रजस, तमस। ये गुण जन्म से ही व्यक्ति के मस्तिष्क या मानस में निहित होते हैं तथा इनमें परस्पर समानता होती है जिससे वह सामान्य व्यक्ति कहलाता है। इन तीन गुणों में से 'सत्व' सदैव गुरू व सत्यरूप लिए रहता है अर्थात् इसमें विचलन नहीं होता है। 'रजस' का अर्थ है अतिव्ययी आवेष। इसमें इरोस, सुख की भावना व आनन्द प्राप्त करने की इच्छा होती है। 'तमस' सर्वाधिक खतरनाक गुण माना गया है, क्योंकि इसमें दुष्टता, नीचे गिराना जैसी प्रवृत्तियाँ विद्यमान होती हैं। 'रजस' व 'तमस' में वृद्धि या न्यूनता आने पर अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं, जो कि मानसिक जीवन में असामान्यता ला देते हैं। अतः अथर्ववेद के अनुसार व्यवहार में सामान्यता तब ही संभव है जब 'रजस' और 'तमस' गुण एक निश्चित मात्रा में रहें, परन्तु मनुष्य जीवन–पर्यन्त इन गुणों को एक निश्चित सीमा में बांधकर नहीं रख सकता, अतः वह असामान्यता के रास्ते पर चला जाता है, तथा उसमें अनेक 'दोषों' का समावेश हो जाता है, जो मानसिक बीमारी का रूप ले लेते हैं। सामान्यता व असामान्यता के सम्बन्ध में आधुनिक विचार भी अथर्ववेद के पूर्णतः समान हैं। अथर्ववेद का अर्थ है अथर्वों का वेद या अभिचार मंत्रों का ज्ञान अथर्वन् बहुत प्राचीन है। प्राचीन समय में अथर्वन् शब्द से पुरोहित का बोध होता था। लेकिन कुछ समय पश्चात् यह शब्द अभिचार के पुरोहित के अर्थ में प्रतिष्ठित हो गया। कलिपदेव द्विवेदी के मतानुसार अथर्वन् ऋषि के नाम पर इस वेद का नाम अथर्ववेद पड़ा। इस वेद में अथर्वा ऋषि के ही मंत्र सबसे अधिक हैं। इनकी संख्या 1768 है। अथर्ववेद के उपलब्ध अनेक नामों में अथर्वाङ्गिरस एक नाम है। इसका अर्थ है अथर्वों व अङ्गिरों का वेद। पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में अथर्वन् भाग में रोग नाशक और सुखोत्पादक मंत्र है। मैक्डानल के अनुसार अथर्ववेद की रचना ब्रह्मा नामक पुरोहित के लिए हुई। अतः इसे ब्रह्मवेद भी कहते हैं। अथर्ववेद के अनुसार व्यक्तित्त्व का तात्पर्य केवल उपरोक्त गुणों के योग से ही नहीं है बल्कि इससे है कि किस तरह ये गुण सम्मिलित होकर व्यक्ति को एक 'व्यक्ति' का रूप दे देते हैं। इन गुणों के योग में परिवर्तन होने से व्यक्तित्त्व में भी परिवर्तन होतहै तथा अधिक परिवर्तन या समस्थिति में अधिकता या न्यूनता असामान्यता का परिचायक है। वस्तुतः अथर्ववेद को जनसामान्य का वेद स्वीकार किया जाता है। इसमें समायोजित विषय जीवन के अनेक क्षेत्रों में अत्यन्त उपयोगी, सहायक एवं लाभकारी प्रतीत होते हैं।

अथर्ववेद चिकित्सा–शास्त्र से सम्बद्ध तथ्यों का भण्डार है, इससे सम्बन्धित महर्षियों का रोग एवं औषधि विषयक ज्ञान इतना विशद् था कि चिकित्सा के साथ–साथ न केवल औषधियों की अपितु, बाह्य विद्युत्, शारीरिक विद्युत्, सूर्यरश्मि, जल, मिट्टी तथा मान्त्रिक, मानसिक आध्यात्मिक साधनयुक्त चिकित्सा में भी वे सिद्धहस्त थे। वैसे यह बात ध्यान देने योग्य है कि हमारे आदि चिकित्सक आध्यात्मिक, मानसिक एवं मान्त्रिक उपायों पर ही अधिक बल देते थे, जैसे शरीर के आन्तरिक एवं बाह्य रक्तस्रावों को मानसिक एवं मान्त्रिक शक्ति से रोकना, जो कि प्राचीन महर्षियों के शरीरशास्त्र के विस्तृत ज्ञान का भी परिचायक है। इसमें शरीर की नाड़ियों के विषय में विवेचन किया गया है। अथर्ववेद के काल में प्रयोग की जाने वाली उपचार–पद्धति पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि इसमें प्राकृतिक पदार्थों के द्वारा ही चिकित्सा–कार्य पर ज्यादा महत्ता दर्शायी गयी है।